सितंबर १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

विपश्यना पगोडा क्यों?

भगवान बुद्ध ने बौद्ध धर्म नहीं सिखाया। उन्होंने अपने जीवन काल में किसी एक व्यक्ति को भी बौद्ध नहीं बनाया। यह सुन कर आश्चर्य होगा, विशास करने को जी नहीं चाहेगा। क्योंकि हम न जाने कब से इस सच्चाई के विरुद्ध ही बोलते-सुनते आए हैं, लिखते-पढ़ते आए हैं। परंतु ऐतिहासिक सच्चाई यही है, सही हकीकत यही है कि बुद्ध ने बौद्ध धर्म नहीं सिखाया, न ही किसी को बौद्ध बनाया।

भगवान बुद्ध ने धर्म सिखाया और लोगों को धार्मिक बनाया। धम्मगिरि स्थित विपश्यना विशोधन विन्यास ने समस्त बुद्ध वाणी और उससे संबंधित विशाल पालि साहित्य को एक छोटी-सी सघन तश्तरी (सीडी-रोम) में निवेशित कर दिया है। यह साहित्य सचमुच विशाल है। इसमें १४६ ग्रंथ हैं जिनके ५२,६०२ पृष्ठों में कुल ७४,४८,२४८ शब्दों का समावेश है। इस आश्चर्यजनक आधुनिक उपकरण में यह सुविधा उपलब्ध है कि अत्यंत सरलता और शीघ्रता से इस विशाल साहित्य में किसी भी शब्द को ढूंढा जा सकता है। कोई शब्द किन-किन ग्रंथों में, किन-किन पृष्ठों पर और किन-किन पंक्तियों में कहां-कहांआया है, इस तथ्य की जानकारी तत्काल प्राप्त की जा सकती है। इस विश्वनीय तकनीकी सुविधा का प्रयोग करने पर उपरोक्त कथन सर्वथा सत्य सिद्ध हुआ। समग्र बुद्धवाणी में और तत्संबंधित भाष्य, टीकाओं तथा अनुटीकाओं के विपुल साहित्य में उनकी शिक्षा के प्रति अथवा उनके शिष्यों के प्रति कहीं भी 'बौद्ध' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है।

समग्र बुद्धवाणी में भगवान बुद्ध की शिक्षा के लिए "धर्म" शब्द का ही सर्वत्र प्रयोग हुआ है, "बौद्ध धर्म" का नहीं। धर्म के साथ कहीं कोई विशेषण जुड़ा भी है तो वह गुणवाचक ही है, न कि संप्रदायवाचक। जैसे **सद्धम्म** (सत्य धर्म) **अरियो धम्मो** (आर्य धर्म) **धम्मो सनन्तनो** (सनातन धर्म) आदि आदि। उनके शिष्यों को कहीं भी "बौद्ध" नहीं कहा गया है। उनके बताए मार्ग पर चल कर लाभान्वित हुए लोगों के लिए इन छह शब्दों का ही प्रयोग दिखाई देता है; **धम्मि** (धर्मी), **धम्मिको** (धार्मिक), **धम्मट्ठो** (धर्मिष्ठ), **धम्मचारिं** (धर्मचारी), **धम्मविहारी** (धर्मविहारी), **धम्मानुसारी** (धर्मानुसारी)।

बुद्ध के जीवनकाल में ही नहीं बल्कि तदुपरांत सदियों तक "बौद्ध" या "बौद्ध धर्म" जैसे शब्दों का कहीं प्रयोग नहीं मिलता। बुद्ध के लगभग अढाई शताब्दियों पश्चात राज्यलिप्सा में लिप्त हो नृशंस नरसंहार करने वाला और अपने आप को "चंड अशोक" कहलाने में गौरव अनुभव करने वाला सम्राट अशोक धर्म के संपर्क में आया; स्वयं लाभान्वित होकर जब अन्य लोगों को भी धर्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करने लगा तो **धम्म असोक** कहलाया, न कि "बौद्ध अशोक"। उसने अपनी प्रजा के प्रति वात्सल्य भाव रखते हुए उनमें **धम्म** "धर्म" का प्रचार-प्रसार किया, न कि "बौद्ध धर्म" का। पड़ोसी देशों में ही नहीं, सुदूर पश्चिमी देशों में भी, भारत से अनमोल उपहार स्वरूप **धम्म रतन** (धर्म रत्न) ही भेजा, "बौद्ध धर्म" नहीं। इस कल्याणकारी ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उन देशों में धर्मनिष्ठ **धम्मदूत** (धर्मदूत) भेजे, "बौद्ध दूत" नहीं। अब तक सम्राट अशोक के जितने भी शिला लेख और स्तंभ लेख प्रकाश में आए हैं, उनमें "बौद्ध" शब्द कहीं ढूंढे भी नहीं मिलता। सर्वत्र धर्म शब्द का ही प्रयोग है। धर्म सार्वजनीन है, सबका है। इसीलिए इस मार्ग पर चलने वाला सम्राट अशोक अपनी प्रजा को उपदेशता है कि एक संप्रदाय के लोग दूसरे संप्रदाय की कभी निंदा नहीं करें। परस्पर प्यार मोहब्बत रखें। सार्वजनीन धर्म की यही विशेषता है।

बुद्ध की ऐसी सार्वजनीन धर्मशिक्षा कब संकुचित दायरे में सीमित हो गयी, यह अनुसंधान का विषय है। यह भाषा और इतिहासवेत्ताओं के शोध का विषय है कि 'बौद्ध', 'बौद्ध धर्म' और 'बौद्ध दर्शन' जैसे संप्रदायवादी शब्द कब और किसके द्वारा प्रयोग में लाए जाने लगे। विपश्यना विशोधन विन्यास भी इस दिशा में उचित अनुसंधान करेगी।

इतना तो स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि इस शब्द का प्रयोग तभी से होने लगा होगा जब से कि देश ने भगवान बुद्ध की सही शिक्षा का सार भुला दिया। शनैः शनैः तत्संबंधी समस्त मूल साहित्य खो दिया और सबसे बुरी बात यह हुई कि उस सार को अनुभव पर उतार कर उसे जीवनचर्या का अंग बना देने वाली **विपश्यना** विद्या खो दी। वह विपश्यना विद्या जो कि बुद्ध की शिक्षा का व्यवहारिक प्रयोगात्मक पक्ष था और जिसके अभ्यास से जाति, वर्ण, वर्ग और संप्रदाय तथा देश-प्रदेश की कृत्रिम सीमाओं को तोड़ कर जन-जन का उपकार हो रहा था और जो बुद्ध की शिक्षा के सार्वजनीन होने का प्रत्यक्ष प्रमाण थी। विपश्यना विद्या के लुप्त हो जाने से बुद्ध की मौलिक शिक्षा की क्षति हुई और अपने देश की ही नहीं बल्कि समस्त मानव जाति की बहुत बड़ी हानि हुई। बुद्ध की धर्म-शिक्षा जो सब की थी, वह "बौद्ध धर्म" बन कर केवल "बौद्ध" कहलाने वाले लोगों तक सीमित रह गयी। विपश्यना के अभाव के कारण अधिकांश लोग बुद्ध की कल्याणकारी शिक्षा के सार्वजनीन, सार्वदेशिक और सार्वकालिक महत्त्व को भूल बैठे। जब तक "धर्म" था तब तक उसे ग्रहण करने में किसी को संकुचाहट नहीं होती थी, परंतु "बौद्ध धर्म" कहते ही यह भ्रांति फैलनी स्वाभाविक थी कि यह तो बौद्धों का धर्म है, हमारा नहीं। बुद्ध ने जिसे **अप्पमाणो धम्मो** (अपरिमित धर्म) कहा, वह एक व्यवस्थित रिलिजन के क्षुद्र बाड़े में बंद होकर **परिमाणवत्ती** (परिमित) बन गया और दुर्भाग्य से विश्व के विभिन्न संप्रदायों की ओछी कतार में बैठा दिया गया। इस कारण लोग उसके सर्वजन हितकारी स्वरूप के महत्त्व से अनभिज्ञ रह गये, इससे प्राप्त होने वाले लाभ से वंचित रह गये। सौभाग्य से पड़ोसी देश म्यंमा में थोड़े से समझदार लोगों द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदियों तक शुद्ध रूप में संभाल कर रखी जाने के कारण इस सार्वजनीन विपश्यना विद्या का अब पुनः अभ्युदय हुआ है। भारत में इसका पुनरागमन हुआ है। विश्व में पुनर्जागरण हुआ है। पिछले लगभग तीन दशकों में इसके प्रयोग द्वारा यह सर्वथा सिद्ध हो गया है कि बुद्ध की मूल शिक्षा किसी एक संप्रदाय के दायरे में बँधी रहने के

लिए नहीं है। यह विश्वजनीन है। विश्व के सभी संप्रदायों और सभी जाति, वर्ण, वर्ग के लोग इस कल्याणकारीविद्या का लाभ उठा सकते हैं, प्रत्यक्ष उठा भी रहे हैं। यह विश्वास करना गलत नहीं होगा कि इसके विकास द्वारा विभिन्न संप्रदायों और विभिन्न जातियों में चल रहे द्वेष-दुर्भाव की कलह दूर हो सकेगी और देश में तथा विश्व में सभी लोगों में पारस्परिक स्नेह सौहार्द्र की सद्भावना उत्पन्न हो सकेगी।

विपश्यना भारत की अत्यंत प्राचीन साधना पद्धति है। समय-समय पर जो भी व्यक्ति बुद्ध बनता है वह इस विलुप्त विद्या को खोज कर ही बोधि प्राप्त करता है। गौतम बुद्ध के पूर्वकालीन वैदिक साहित्य में इस विद्या की भूरि-भूरि प्रशंसा उल्लिखित है। लेकिन केवल प्रशंसा ही है। तत्कालीन भारत इस विद्या का प्रयोग सर्वथा भुला बैठा था। शाक्यमुनि सिद्धार्थ गौतम ने अत्यंत परिश्रम द्वारा यह विलुप्त हुई विद्या पुनः खोज निकाली और अत्यंत करुणचित्त से लोक कल्याण के लिए इसे सर्वजनहितार्थ प्रकाशित प्रसारित किया। दुर्भाग्य से कुछ ही सदियों बाद भारत उस ऐतिहासिक बुद्ध को भी खो बैठा और अपनी उस पुरातन, सनातन विपश्यना विद्या को भी पुनः गँवा बैठा। ऐसी कल्याणकारिणीविद्या जिसके कारण भारत का अतीत अत्यंत गरिमामय रहा और संसार ने विश्व-गुरु के रूप में उसका सादर अभिनंदन किया।

यह विशाल स्तूप भारत की उस प्राचीन गौरव गरिमा का ज्वाजल्यमान प्रकाशस्तंभ साबित होगा। भारत की पुरातन, सनातन सार्वजनीन धर्म-परंपरा को लोक कल्याण के लिए पुनः उजागर करेगा। यह स्वर्णिम स्तूप उस स्वर्णिम युग का पुनरावर्तन करेगा जबकि भारत अध्यात्म विद्या के साथ-साथ लौकिक शिक्षाओं और भौतिक ऐश्वर्य में भी सारे संसार का सिरमौर था। यह गगनचुंबी स्तूप अपना ऊंचा सिर उठा कर भारत के ही नहीं, विश्व के तमाम लोगों का आह्वान करेगा और तथागत तथा उनकी सर्वहितकारिणी शिक्षा को बुलंदी के साथ मुखरित करेगा।

इसकी वर्तुलाकार प्रदर्शनी-दीर्घा में उच्चकोटि की परंपरागत शिल्प और चित्रकला के आधार पर बनी झांकियां, प्रकाश और कथन के आधुनिकतम उपकरणों की सहायता से भगवान बुद्ध के बारे में फैली हुई भ्रांतियों को दूर करेंगी। श्रोताओं और दर्शकों को इस तथ्य की जानकारी मिलेगी कि शाक्यमुनि गौतम बुद्ध न कोई देव थे, न किसी देव के अवतार अथवा प्रतिनिधि। वे किसी दैवी कृपा से बुद्ध नहीं बने थे। अनेक जन्मों के कठोर परिश्रम द्वारा भव-पार उतारने वाली सद्गुणों की पुण्य पारमिताओं को परिपूर्ण करके इस अंतिम जीवन में उन्होंने सम्यक संबोधि उपलब्ध की थी और इसीलिए संबुद्ध यानी स्वयं बुद्ध कहलाये। वे पौराणिक नहीं, बल्कि पूर्णतया ऐतिहासिक मानव थे। एक मानव द्वारा उपलब्ध की जा सकने वाली सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर लेने के कारण वे महामानव कहलाये, महापुरुष कहलाये। असीम करुणा से सराबोर हो कर दुखियारी मानवता को दुःख-विमुक्ति के लिए कल्याणी विपश्यना विद्या जीवन भर बांटते रहे, इसीलिए महाकारुणिक कहलाये। राग, द्वेष और मोह को पूर्णतया भग्न कर लेने के कारण भगवान कहलाये। कर्म और तदनुकूल कर्म-विपाक के नैसर्गिक नियमों का स्वयं प्रत्यक्षीकरण करके उसके अस्तित्व को स्वीकार करने और उसी का प्रचार-प्रसार करने के कारण परम आस्तिक कहलाये। उन दिनों के भारत में आस्तिकता की यही परिभाषा सर्व स्वीकृत थी।

ऐतिहासिक महामानव बुद्ध का सत्य स्वरूप प्रकाशित होगा तो भारत में बुद्ध के प्रति फैली हुई भ्रांतियों का निराकरण होगा और अंधविश्वासजन्य दैवी चमत्कारों के स्थान पर मानवी पराक्रम और पुरुषार्थ की गौरवमयी महत्ता स्थापित होगी।

शाक्यमुनि गौतमबुद्ध के दीर्घ जीवन में अनेक ऐतिहासिक घटनाएं घटीं। इस दीर्घा में प्रदर्शनकारी कक्षों की संख्या सीमित होगी। अतः उन सब का प्रदर्शन संभव नहीं होगा। परंतु जो कुछ प्रदर्शित किया जा सकेगा उससे यह सत्य उजागर होगा कि भगवान बुद्ध ने कोई संप्रदाय स्थापित नहीं किया। चेला बना कर किसी को सांप्रदायिक बाड़े में बांधने का उनका कोई प्रयोजन नहीं था। उन्होंने लोगों पर असीम अनुकंपा करते हुए जो शुद्ध धर्म प्रकाशित किया उसका एक मात्र उद्देश्य "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" ही था न कि "आत्म हिताय या संप्रदाय हिताय"। जिन्हें धर्म में परिपक्व करके धर्म प्रकाशन के लिए भेजा उन्हें भी **बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय** के मंगल भावों से उद्बोधित करके ही भेजा। संप्रदाय स्थापन करने के स्थान पर उन्होंने अत्यंत प्राचीन सत्य सनातन धर्म को ही अपने नितांत शुद्ध रूप में पुनः संस्थापित किया। शुद्ध धर्म के स्वस्थ सुंदर शरीर में कोढ़ की तरह सड़ते हुए बदसूरत दुःखदायी फोड़ों को एक महाकारुणिक महाभिषक की भांति दूर करने का भरपूर प्रयत्न किया। धर्म के नाम पर निर्बल निरपराध मूक पशुओं की बलि चढ़ाए जाने वाले निर्दयी कर्मकांडों को बंद करवाने का सफल प्रयास किया। गुणों की उपेक्षा करके जन्म के आधार पर स्थापित की गयी दूषित वर्ण-व्यवस्था और तज्जन्य कलुषित जातिप्रथा को उखाड़ कर कर्म के आधार पर धर्म की शुद्धता स्थापित करने का भरपूर प्रयत्न किया। निस्सार कर्मकांडों द्वारा चित्तविशुद्धि और भवविमुक्ति उपलब्ध होगी, इस अंधविश्वास में भोली जनता डूबी हुई थी। असीम मैत्री चित्त द्वारा तथागत ने ऐसे भटके हुए लोगों पर करुणावृष्टि करके उन्हें शील, समाधि और प्रज्ञा के धर्म मार्ग पर लाने का भरसक प्रयत्न किया। अपने-अपने धर्मग्रंथों के पठन-पाठन और अपनी-अपनी दार्शनिक मान्यताओं के प्रति अभिनिवेशपूर्ण ऊहापोह को ही जीवन का अभीष्ट लक्ष्य मान बैठे हुए भ्रांत लोगों को विपश्यना के अभ्यास द्वारा शुद्ध धर्म को जीवनचर्या का अभिन्न अंग बनाने का व्यहारिक प्रयोग बताया। किसी काल्पनिक अदृश्य सत्ता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्ति प्रशंसा करते हुए प्रार्थना, याचना करने पर वह प्रसन्न होकर दुःखमुक्त कर देगी, ऐसी अंधमान्यताओं में अनेक लोग उलझे हुए थे। उन्हें स्वकर्मानुसार कर्मफल प्राप्त होने के नैसर्गिक नियमों पर आधारित सत्य सनातन धर्म का महत्त्व समझाया और काया, वाणी, चित्त के कर्म सुधारने की कल्याणकारी विद्या सिखायी।

इसी विपश्यना द्वारा शाक्यमुनि को स्वयं भवमुक्त अवस्था प्राप्त हुई। वे सम्यक संबुद्ध बने। इसी विद्या के प्राप्त होने पर असीम धैर्य, निर्मलता, समता, मैत्री और करुणा का ऐसा धर्म-बल प्राप्त किया, जिसके कारण अनेक विषम परिस्थितियों का अविचलित होकर सामना कर सके। उनके जीवन के ऐसे कुछ एक प्रेरक प्रसंगों

की झांकियां इस दीर्घा में दिखायी जायेंगी जिससे शुद्ध धर्म के प्रति लोगों का उत्साह जागे। उनके जीवनकाल के जिन अनेकानेक लोगों ने इसी विपश्यना विद्या द्वारा निर्भय और निर्वैर होकर भवमुक्त अवस्था प्राप्त की, उनमें से कुछ एक से संबंधित ऐतिहासिक प्रसंगों की प्रेरणात्मक झांकियां प्रस्तुत की जायेंगी।

इस विपश्यना पगोडा की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह होगी कि इसमें भगवान बुद्ध की पावन शरीर धातु स्थापित की जायेगी। विश्व-युद्ध पूर्व की साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार के पुरातत्व विभाग ने भारत के एक प्राचीन स्तूप के भग्नावशेष में से भगवान बुद्ध की शरीर धातु प्राप्त की थी। उन्होंने इसे लंदन ले जाकर वहां के अपने म्युजियम में प्रदर्शनी के लिए रखा था। वस्तुतः भगवान की पावन धातुओं को रखने के लिए कोई म्युजियम उचित स्थान नहीं होता है। वैशाख पूर्णिमा की जिस रात भगवान का महापरिनिर्वाण हुआ, उसके अंतिम प्रहर में आनंद द्वारा प्रश्न किए जाने पर भगवान ने यह स्पष्ट आदेश दिया था कि उनकी शरीर धातु किसी राजनगरी के सार्वजनीन स्थान पर उपयुक्त चैत्य बना कर उसमें स्थापित की जायँ, ताकि श्रद्धालु लोग उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट कर पुण्यलाभी हो सकें। जो साधक थे उन्हें साधना करने का ही आदेश दिया। वैसे भगवान ने पहले भी किसी एक अवसर पर बहुत स्पष्ट शब्दों में समझाया था कि तथागत की सही वंदना यही है कि पालथी मार कर बैठे, रीढ़ की हड्डी सीधी रखे और अंतर्मुखी होकर दृढ़तापूर्वक विपश्यना साधना करे। भगवान के इन आदेशों की पूर्ति करने के लिए तत्कालीन उत्तर भारत के आठ राज्यों के शासक इन धातुओं को अपनी-अपनी राजधानी में संस्थापित करने के लिए आतुर हो उठे और परस्पर झगड़ने लगे। इस बात को सब जानते थे कि जहां भी धातु-स्तूप बनेगा, उस राजनगरी की शोभा कई गुना बढ़ जायेगी। वह स्तूप एक तीर्थ स्थान बन जायगा। दूर-दूर से अनेक श्रद्धालु लोग तीर्थ-यात्रा के लिए आयेंगे और राज्य को पुण्यलाभ तो होगा ही, उसकी प्रसिद्धि भी खूब बढ़ेगी। अतः सभी चाहते थे कि पावन अस्थि-निधान उनकी राजधानी में बने चैत्य में ही हो। यह झगड़ा बढ़ते देख कर द्रोण नामक एक समझदार ब्राह्मण ने इन धातुओं को आठ भागों में विभक्त करके सभी को संतुष्ट किया। इस प्रकार भगवान के आदेशों के अनुकूल आठ राजधानियों में आठ भव्य धातु-स्तूप बने। वे सदियों तक श्रद्धालु साधकों के लिए पावन तीर्थ-स्थल बने और लोगों को सद्धर्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा देते रहे। अतः यह स्पष्ट था कि कोई म्युजियम इन धातुओं के प्रदर्शन के लिए उपयुक्त स्थान नहीं था। अतः इस स्थिति को लेकर श्रीलंका में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक शांतिपूर्ण पर सबल विरोध उठा। ब्रिटिश सरकार ने शीघ्र ही समझ लिया कि उनकी इस नासमझी के कारण लंका के ही नहीं, बल्कि विश्व भर के श्रद्धालु लोगों की भावनाओं को गहरी ठेस पहुँची है। अतः उन्होंने इन अवशेषों को म्युजियम से मुक्त करके भारत वापस भेजने का समझदारीपूर्ण निर्णय किया। ये अवशेष पिछले महायुद्ध के बाद भारत लौटे। यहां स्वतंत्र भारत सरकार के सहयोग से इन्हें महाबोधि सोसायटी द्वारा बनाए गये बुद्ध मंदिरों में सादर स्थापित किया गया। महाबोधि सोसायटी अब इन्हीं पावन अवशेषों का एक भाग अत्यंत कृपापूर्वक इस विशाल विपश्यना स्तूप में स्थापित करने के लिए दे रही है जो कि २६ अक्टूबर को होने वाले सार्वजनीन शिलान्यास समारोह का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अंग होगा। इन पवित्र धातुओं के निधान से यह विपश्यना स्तूप विश्व भर के करोड़ों श्रद्धालु लोगों के लिए एक पावन तीर्थ स्थान बनेगा।

सामान्यतः ऐसे स्तूप ठोस होते हैं। परंतु आधुनिकतम वास्तु शिल्पकला की तकनीक द्वारा इसे भीतर से ठोस न रख कर उसमें एक विशाल साधना कक्ष बनाया जायगा, जिसके बीचोबीच ये पावन धातु रखी जायेंगी ताकि इनके इर्द-गिर्द हजारों साधक-साधिकाएं एक साथ बैठ कर सामूहिक साधना कर सकेंगे और इन पावन धातुओं की धर्म-तरंगों से लाभान्वित हो सकेंगे। राजनगरी मुंबई में आज भी हजारों विपश्यी साधक हैं। यह संख्या दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है और भविष्य में भी बढ़ती ही रहेगी। अतः उनके सामूहिक साधना के लिए यह विशाल विपश्यना कक्ष अत्यंत प्रेरणादायक तथा उपयोगी सिद्ध होगा। स्पष्ट है कि इस विशाल भव्य स्तूप से राजनगरी मुंबई की शोभा बढ़ेगी और घनी आबादी वाली मुंबई राजनगरी से इस धर्मस्तूप की उपादेयता बढ़ेगी।

एक प्रश्न और उठता है कि इस स्तूप का निर्माण बर्मी स्थापत्यकला के अनुरूप क्यों किया जा रहा है, भारतीय स्थापत्यकला के अनुरूप क्यों नहीं? इसे भी समझना चाहिए। भारत की शुद्ध सनातनी परंपरा में धर्म में पुष्ट होने की जांच करने के लिए दो महत्त्वपूर्ण मापदंड माने गए हैं। एक है **पुब्बकारी** होना याने बदले में कुछ पाने की कामना के बिना नितांत निःस्वार्थभाव से परोपकार करने में पहल करना। दूसरे **कतञ्ञूकतवेदी** याने कृतज्ञ होना। वैसे तो किसी से कोई साधारण लौकिक सहायता भी मिले तो उसके प्रति कृतज्ञ होना ही चाहिए। हमें तो ब्रह्मदेश से दो हजार वर्षों से खोई हुई यह अनमोल विपश्यना विद्या प्राप्त हुई है, जिसे उस देश ने शुद्ध रूप में संभाल कर रखी। इसी कारण अब यह विद्या हमें अपने शुद्ध रूप में प्राप्त हो सकी। दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व जब यह विद्या यहां से अनेक देशों में पहुँची तो भारत के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए उन्होंने जो चैत्य बनवाए, वे भारतीय स्थापत्य के अनुरूप ही थे। ताकि वहां के श्रद्धालु लोग उन चैत्यों के दर्शन करते हुए भारत के उपकार को याद करते रहें। परंतु सदियां बीतते-बीतते उस मूल भारतीय स्थापत्य पर वहां की स्थानीय शिल्पकला का प्रभाव पड़ा और इन अलग-अलग देशों के चैत्यों ने अपनी-अपनी विशिष्टता धारण कर ली। आज यह विद्या हमें म्यंमा(बरमा) से मिली है। उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा धर्म है। सदियों तक यहां के लोग इस बर्मी पगोडा को देख कर उस देश के उपकार को कृतज्ञता के भाव से स्मरण करते रहेंगे। कृतज्ञता का भाव जगने से उनकी अपनी धर्मचेतना पुष्ट होगी। इस प्रकार यांगों(रंगून) के श्वेडगोन पगोडा की प्रतिकृति के रूप में इस विशाल पगोडा का निर्माण सार्थक होगा, सफल होगा। देशवासियों का मंगल होगा, कल्याण होगा।

कल्याणमित्र,
(सत्यनारायण गोयन्का)